शंका १७—उपचारका लक्षण क्या है ? निमित्त कारण और व्यवहारनयमें यदि क्रमशः कारणता और नयत्वका उपचार है, तो इनमें उपचार लक्षण घटित कीजिए ।

समाधान—परके संबंधसे जो व्यवहार किया जाता है उसे उपचार कहते हैं, जैसे मिट्टीके घड़ेको घी-का घड़ा कहना उपचार है । या जीवको वर्णादिवान कहना उपचार कथन है ।

वस्तुके भिन्न कर्ता-कर्मादि बतलाना व्यवहार या उपचार है, किन्तु अभिन्न कर्ता-कर्म बतलाना निश्चय है । उपचारमें भी कारण शब्दका प्रयोग इसलिए किया है कि निमित्त और उपचारसे साथ कार्यकी बाह्य व्याप्ति है । निमित्तसे कथन होता है । कार्य निमित्तकी उपस्थितिमें उपादानसे होता है । जैसे सम्पत्ति आदिकी प्राप्ति अपने भाग्यसे होती है, उसमें सहयोगी निमित्त बन जाते हैं । अतः व्यवहार इसलिए अभूतार्थ कहा जाता कि जैसा वह कहता है, वस्तुका वह असली स्वरूप नहीं है और निश्चय इसलिए भूतार्थ कहा जाता है क्योंकि उसका विषय ही वस्तुका असली स्वरूप है ।

इस प्रकार खानिया चर्चाके अध्ययन-मननसे ज्ञात होता है, जितने भी कुछ तथ्य विवादास्पद बना दिये गये । यदि मध्यस्थ होकर शान्तिसे उनका निर्णय करें तो सभी विवाद सुलझ सकते हैं । पूज्य आचार्य श्री शिवसागर महाराजने इसीलिए इस तत्वचर्चाके आयोजन करनेकी प्रेरणा दी थी । इस तत्त्वचर्चामें आदर-णीय पण्डित फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्रीकी चारों अनुयोगोंके अधिकार पूर्ण विद्वत्ताका परिचय मिल जाता है । ऐसे विद्वान् कम ही देखनेको मिलते हैं, जिनका चारों अनुयोगोंका इतना सुलझा हुआ सुस्पष्ट अगाध ज्ञान हो । तत्त्वज्ञानका यथार्थज्ञान प्राप्त करनेके लिए जिज्ञासु बंधुओंको खानिया तत्त्वचर्चाका अध्ययन-मनन अवश्य ही करना चाहिए ।

●

लब्धिसार-क्षपणासार : एक अनुशीलन

पं० नरेन्द्रकुमार भिसीकर, शोलापुर

चार अनुयोगोंके रूपमें उपलब्ध जिनागममें आत्म-तत्त्व और उसकी विशुद्धिका ही मुख्यता से वर्णन किया गया है । करणानुयोगका मूलसार लेकर "लब्धिसार" में सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र तथा उसकी उत्पत्तिके फलका सांगोपांग विवेचन किया गया है । औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक तीनों प्रकारके सम्यग्दर्शनोंमें आत्मविशुद्धि ही मुख्य है । यथार्थमें सम्यग्दर्शन के तीन भेद निमित्तकी अपेक्षा वर्णित किए गये हैं । उक्त ग्रन्थमें आत्माके दर्शन और चारित्र गुण रूप शक्तियोंके प्रकट होनेकी योग्यता रूप लब्धिका विशद विवेचन किया गया है । इसलिये इसका नाम "लब्धिसार" सार्थक है । मुख्य रूपसे दर्शनलब्धि और चारित्र-लब्धिका स्वरूप और उनके भेदोंका तथा उनकी कारण-सामग्रीका वर्णन छह अधिकारोंमें किया गया है । अधिकारोंका विभाजन इस प्रकार किया गया है : (१) प्रथमोपशम सम्यक्त्व लब्धि, (२) क्षायिक सम्यक्त्व लब्धि, (२) देशसंयम लब्धि, (४) सकलसंयम लब्धि, (५) औपशमिक चारित्र लब्धि, (६) क्षायिक चारित्र लब्धि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त सम्पूर्ण विवेचन "कषायप्राभृत" (कसायपाहुड) की टीका जयधवलाके पन्द्रह अधिकारोंमें से पश्चिम-स्कन्ध नामके पन्द्रहवें अधिकारके अनुसार किया गया है। यथार्थमें महान् सिद्धान्त ग्रन्थके आधार पर ही इसकी रचना हुई। क्योंकि षट्खण्डागम जीवस्थानको छोड़कर शेष पाँच खण्डोंकी आधारभूत वस्तु "महाकम्मपयडिपाहुड" है। जीवस्थानकी सामग्री अन्य मूल अंगपूर्वकी है। अतः आगमके अनुसार इनमें तत्त्वप्ररूपणा गर्भित है। "षट्खण्डागम" और "कषायप्राभृत" मूल आगम साहित्य है। "लब्धिसार"की संस्कृत टीकासे स्पष्ट हो जाता है कि रचनाकार ने मूल आगमके अनुसार ही विषयको रचनाबद्ध किया है। दिगम्बर जैन वाङ्मय में आगम-साहित्य गुरु-परम्परासे क्रमिक वाचनाके रूपमें उपलब्ध होता है। "महाकम्मपयडिपाहुड"में आठ कर्मोंके विवेचनकी प्ररूपणा तथा "पेज्जदोसपाहुड"में केवल मोहनीय कर्मकी विशद प्ररूपणा उपलब्ध होती है। इनके अतिरिक्त आचार्य यतिवृषभ रचित "कसायपाहुड"की सूत्र-गाथाओं पर चूर्णिसूत्रोंकी रचना भी समुपलब्ध है। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीने इन तीनों सिद्धान्ध-ग्रन्थोंके आधार पर तीन रचनाएं निबद्ध कीं, जिनके नाम हैं—गोम्मटसार, लब्धिसार और त्रिलोकसार। "क्षपणासार" कोई स्वतन्त्र रचना नहीं है। इसका अन्तर्भाव 'लब्धिसार" में ही हो जाता है।

क्षपणासार-गर्भित "लब्धिसार"की रचना ६५३ गाथाओं में निबद्ध है। इस ग्रन्थके सम्यक् अनुशीलनसे यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीने साठ सहस्र श्लोकप्रमाण "जयधवला" टीकाका सार ग्रहण कर ६५३ गाथाओंमें संकलित कर दिया। आचार्यप्रवरकी यह महती विशेषता है कि उन्होंने गागरमें सागर भर दिया। "जयधवला"का कोई भी विषय इस ग्रन्थमें निबद्ध होने से छूटा नहीं है। पण्डितप्रवर टोडरमलजीने स्पष्ट रूपसे उल्लेख किया है कि इस ग्रन्थका प्रकाश धवलादि शास्त्रोंके अनुसार किया गया है। इस ग्रन्थका महत्त्व इससे भी स्पष्ट है कि इस पर संस्कृत टीकाएं लिखी गई। केशववर्णीकी संस्कृत टीका प्रसिद्ध है। "लब्धिसार"के छह अधिकारोंमें से पांचवें चारित्रमोहनीय उपशमना अधिकार तक संस्कृत टीका पाई जाती है। कर्म-क्षपणाके अधिकारकी गाथाओंका विशदीकरण माधवचन्द्र त्रैविद्यदेवके संस्कृत गद्यरूप "क्षपणासार"के अभिप्रायके अनुसार इस ग्रन्थमें सम्मिलित किया गया है। इसलिये इस ग्रन्थका नाम लब्धिसार-क्षपणासार रखा गया है।

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीका

संस्कृत टीकाओं की भाँति आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजी कृत "सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका" मूल आगमानुसारिणी विशद तथा सुबोध टीका है। इस टीका का अध्ययन करनेसे पण्डितप्रवर के तलस्पर्शी ज्ञानका सहज ही अनुमान हो जाता है। सिद्धान्तशास्त्री पं० फूलचन्द्रजीके शब्दोंमें "पण्डितजीने अपनी टीकामें जितना कुछ लिपिबद्ध किया है, उसे यदि हम उक्त संस्कृत वृत्तियों और "क्षपणासार"का मूलानुगामी अनुवाद कहें, तो भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इतना अवश्य है कि जहां आवश्यक समझा वहाँ भावार्थ आदि द्वारा उन्होंने उसे विशद अवश्य किया है। "इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वर्तमान में यदि "सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका" टीका न होती, तो करणानुयोगका दुरूह विषय विद्वानोंकी समझके भी बाहर रहता। पण्डितप्रवर टोडरमलजीकी ही दुर्गम घाटीमें प्रवेश कर अध्यात्मके आलोकका प्रकाश किया, जिसे भावी पीढ़ियां सतत मार्ग-दर्शनके रूपमें 'सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका'को स्मरण करती रहेंगी। जो महान् कार्य श्रीमन्नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीने गाथाओंमें 'लब्धिसार'की रचनाको प्रकाशित कर किया, वही कार्य आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजीने देशी भाषा वचनिकाके माध्यमसे किया। यदि पण्डितजीने यह टीका न लिखी होती, तो बीसवीं शताब्दीके विद्वान् करणानुयोगके गहन-गम्भीर पारावारमें प्रवेश नहीं कर पाते। आधुनिक युगमें विद्वानोंके गुरुओंके भी गुरु पण्डितप्रवर गोपालदासजी बरैयासे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेकर आज भी यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होने वाले विद्वान् करणानुयोगका रहस्य समझने वाले अवश्य ही "सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका" से उपकृत हुए हैं। पंडितप्रवर टोडरमल जीकी इस टीकाकी यह विशेषता है कि मूल भावको सुरक्षित रख कर वह गाथाके अर्थ, भावार्थ आदिको स्पष्ट करनेवाली प्राचीन पद्धतिका अनुकरण नहीं करती, किन्तु नवीन शैलीमें भावोंके परतोंको सरल शब्दोंमें न कम और न अधिक पदोंकी रचना कर मूल विषयको व्यवस्थित क्रमसे स्पष्ट करते हुए आगे बढ़ते हैं। यही कारण है कि "लब्धिसार" की वचनिकामें जहाँ-कहीं संस्कृत-वृत्तिकी छाया लक्षित होती है, वहीं कोई भी ऐसा स्थल नहीं है जहाँ अर्थ संदृष्टि या बीजगणितीय पद्धतिका अनुगमन किया गया हो। सर्वत्र अपनी बोलचालकी भाषामें भावोंको स्पष्ट किया गया है।

सन् १९८० में श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल, श्रीमद्राजचन्द्र आश्रम, अगाससे पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री द्वारा सम्पादित लब्धिसार (क्षपणासारगर्भित) की पण्डितप्रवर टोडरमलजी कृत "सम्यग्ज्ञान-चन्द्रिका" भाषा टीका सहित प्रकाशित हुई है। इस टीकाको सर्वप्रथम देखकर मुझे यह कुतूहल हुआ कि सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीकाके उपरान्त पं० फूलचन्द्रजीके सम्पादनकी इसमें क्या विशेषता है? क्योंकि पण्डितप्रवर टोडरमलजीकी विशेषता तो उनकी प्रस्तावना पढ़ते ही स्पष्ट हो जाती है। वे कहते हैं—"शक्तिका अविभाग अंशताका नाम अविभागप्रतिच्छेद है। बहुरि तिनके समूह करि युक्त जो एक परमाणुताका नाम वर्ग है। बहुरि समान अविभागप्रतिच्छेद युक्त जे वर्ग तिनके समूहका नाम वर्गणा है। तहाँ स्तोक अनुभाग युक्त परमाणु-का नाम जघन्य वर्ग है। तिनके समूहका नाम जघन्य वर्गणा है।" इसी प्रकार—

च्यारयो गति वाला अनादि वा सादि मिथ्यादृष्टि सज्ञी पर्याप्त गर्भज मन्द कषायरूप जो विशुद्धता ताका धारक, गुण-दोष विचार रूप जो साकार ज्ञानोपयोग ता करि संयुक्त जो जीव सोई पाँचवीं करणलब्धि विषैं उत्कृष्ट जो अनिवृत्तिकरण ताका अन्त समय विषैं प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करें। इहाँ ऐसा जानना-पण्डितप्रवर टोडरमलजी इसे विशद करते हुए कहते हैं—

"जो मिथ्यादृष्टि गुणस्थानतैं छूटि उपशम सम्यक्त्व होइ ताका नाम उपशम सम्यक्त्व है। बहुरि उप-शमश्रेणी चढ़ता क्षयोपशम सम्यक्त्व तैं जो उपशम सम्यक्त्व ताका नाम द्वितीयोपशम सम्यक्त्व है, तातैं मिथ्या-दृष्टिका ग्रहण किया है। बहुरि सो प्रथमोशम सम्यक्त्व तिर्यंच गति विषैं असंज्ञी जीव हैं तिनकैं न हो है। अर मनुष्य तिर्यंचविषैं लब्धि-अपर्याप्तक अर सम्मूर्छन हैं तिनकैं न हो है। बहुरि च्यारयो गति विषै संक्लेशता करि युक्त जीवकैं न हो है। बहुरि अनाकार दर्शनोपयोगका धारीकैं न हो है, जातैं तहाँ तत्त्वविचार न संभवै है। बहुरि आगे तीन निद्राके उदयका अभाव कहैंगे, यातैं सूता जीव कैं न हो है, तातैं अभव्यकैं न हो है। ए भी विशेषण इहां संभवै हैं ॥१२॥

"सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका" के इस विवेचनका अधिक स्पष्टीकरण करनेके निमित्त सिद्धान्तशास्त्री पंडित फूलचन्द्रजी ने अनेक स्थलों पर "विशेष" तथा टिप्पणीके रूपमें हिन्दी भाषामें टीकाकी है। उक्त स्थल पर वे लिखते हैं—

"विशेष—यहाँ मुख्य रूपसे तीन बातोंका स्पष्टीकरण करना है—(१) जिस अनादि मिथ्यादृष्टि भव्य जीवका संसारमें रहनेका काल अधिक-से-अधिक अर्द्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण शेष रहता है, वह उक्त कालके प्रथम समयमें प्रथमोपशम सम्यक्त्वके योग्य अन्य सामग्रीके सद्भावमें उसे ग्रहण कर सकता है। उस समय उसे प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति नियमसे होती है, ऐसा कोई नियम नहीं है। मुक्त होनेके पूर्व इस कालके मध्यमें कभी भी वह प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करता है। प्रथमोपशम सम्यक्त्वके छूटनेपर सादि मिथ्या-दृष्टि जीव पुनः पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण कालके जानेपर ही उसे प्राप्त करनेके योग्य होता है, इसके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्व नहीं। (२) संस्कृत टीकामें 'शुद्ध' पदका शुभ लेश्यारूप अर्थ किया है। किन्तु नरकगतिमें शुभ लेश्याओंकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। जीवस्थान-चूलिकामें 'विशुद्ध' पदके स्थानमें 'सर्वविशुद्ध' पद आया है। वहाँ इस पदका अर्थ 'जो जीव अधःप्रवृत्तकरण आदि तीन करण करनेके सन्मुख है' यह जीव लिया गया है। प्रकृतमें 'विशुद्ध' पदका यही अर्थ ग्रहण करना चाहिए। (३) यहाँ गाथामें अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें यह जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करता है, ऐसा कहा गया है सो उसका आशय यह लेना चाहिए कि अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयके व्यतीत होनेपर अगले समयमें यह जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करता है। शेष कथन सुगम है।"

इसी प्रकार पण्डितप्रवर टोडरमलजीने स्थितिबन्धापसरणके कालका मूल गाथाके अनुसार यही अर्थ किया—"बहुरि स्थितिबन्धापसरण काल अर स्थितिकाण्डोत्करण काल ए दोऊ समान अन्तर्मुहूर्त मात्र हैं।" इसे समझानेके लिए पं० फूलचन्द्रजी लिखते हैं—"विशेष-करण परिणामोंके कारण उत्तरोत्तर विशुद्धिमें वृद्धि होते जानेके कारण अपूर्वकरणसे लेकर जिस प्रकार एक-एक अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर एक-एक स्थितिकाण्डकका उत्कीरण नियमसे होने लगता है, उसी प्रकार उत्तरोत्तर स्थितिबन्धमें भी अपसरण होने लगता है। इन दोनोंका काल समान अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। उसमें भी प्रथम स्थितिकाण्डकघात और प्रथम स्थितिबन्धापसरणमें जितना काल लगता है, उससे दूसरे आदि स्थितिकाण्डकघात और स्थितिबन्धापसरणोंमें उत्तरोत्तर विशेष हीन काल लगता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि स्थितिकाण्डकघात और स्थितिबन्धापसरणोंका एक साथ प्रारम्भ होता है और एक साथ समाप्ति होती है। प्रकृतमें उपयोगी विशेष व्याख्यान टीकामें किया ही है।"

पं० फूलचन्द्रजीने विशेष टिप्पणोंमें जो खुलासा किया है, उससे उनके करणानुयोग विषयक विशिष्ट ज्ञान तथा जयधवलादि ग्रन्थोंका यथावसर प्रामाणिक उपयोग भलीभाँति लक्षित होता है। स्वयं पंडितजीने स्थान-स्थान पर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। प्रस्तावनामें वे स्वयं लिखते हैं—"इस प्रकार लब्धिसारकी संस्कृत टीकामें जहाँ यह नियम किया गया है कि तिर्यंच और मनुष्य प्रथमोपशम सम्यक्त्वका प्रारम्भ पीतलेश्याके जघन्य अंशमें ही करता है, वहीं 'जयधवला' में 'जहण्णए तेउलेस्साए' पदका यह स्पष्टीकरण किया गया है कि तिर्यंच और मनुष्य यदि अतिमन्द विशुद्धि वाला हो तो भी उसके कम-से-कम जघन्य पीतलेश्या ही होगी। इससे नीचेकी अशुभ लेश्या नहीं होगी। तात्पर्य यह है कि प्रथमोपशम सम्यक्त्वका प्रारम्भ करनेवाले तिर्यंच और मनुष्यके कृष्ण, नील और कापोतलेश्या नहीं होती।"

इतना ही नहीं, स्वयं पण्डितजीने अपने सम्पादनके सम्बन्धमें 'प्राक्कथन' में स्पष्ट किया है—"मुझे सूचित किया गया था कि संस्कृत वृत्ति और सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीका सहित ही इसका सम्पादन होना है। आप जहाँ भी आवश्यक समझें, मूल विषयको स्पष्ट करते जायें और श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीने किस मूल सिद्धान्त ग्रन्थके आधारसे इसकी संकलना की है, उसे भी अपनी टिप्पणियों द्वारा स्पष्ट करते जायें। यह मेरी उक्त ग्रन्थके सम्पादनकी रूपरेखा है। अतः मैंने उक्त ग्रन्थके सम्पादनमें इस मर्यादाका पूरा ध्यान रखकर ही इसका सम्पादन किया है।"

निश्चित ही पण्डितजीने अपनी मर्यादाका पालन कर ऐसे सुन्दर विशेष टिप्पण लिखे हैं कि उनके आधार पर एक स्वतंत्र ग्रंथ बन सकता है। कहीं-कहीं पर ये 'विशेष' एकसे अधिक पृष्ठोंके मुद्रित रूपमें हैं; जैसेकि पृ० ३२-३३, ४०, ४९-५०, ९५, ९९-१००, १३५-३६, ३७, ३८, १४०-४१, १५६-५७, १६०-६१, १६३-६४, १७५-७६, २०५, २०७, २११-१२, २१८-१५, २६१, २७१-७२-७३, ३४९-५०, ३८२-८३, ३८५-८६-८७, ४०४-५, ४४३-४४, ४७६-७७, इत्यादि द्रष्टव्य हैं। कहीं-कहीं पण्डितप्रवर टोडरमल-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीकी टीका विशद तथा लम्बी है। विषयको अत्यन्त स्पष्टताके साथ प्रस्तुत किया गया। जहाँ-कहीं अधिक स्पष्टता आवश्यक प्रतीत हुई है अथवा संकेत मात्र मिले हैं, वहीं विशदीकरण किया गया है। उदाहरणके लिए पं० टोडरमलजी लिखते हैं—'इन अठाईस गाथानिका अर्थ रूप व्याख्यान क्षपणासार विषै नाहीं लिख्या। इहाँ मोकूं प्रतिभास्या तैसैं लिख्या है।' पं० फूलचन्द्रजी इसपर विशेष लिखते हुए कहते हैं—'इसका चूर्णिसूत्रों और जयधवला टीका द्वारा इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है—विवक्षित समयमें प्रदेशोदय अल्प होता है। अनन्तर समयमें असंख्यातगुणा होता है। इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिए। ·····द्रव्यका संक्रम होता है, ऐसा यहाँ समझना चाहिए।'

ये जो करणानुयोगको समझनेके लिए स्थान-स्थानपर पण्डितजीने सूत्र (कुंजी) दिए हैं, वे वास्तवमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। उसको ध्यानमें लिए बिना स्वाध्यायी शास्त्र समझ नहीं सकते हैं। यह अवश्य है कि कहीं-कहीं विस्तारके भयसे तथा एक ही स्थानपर विशद वर्णन होनेसे पण्डितजीने यह कहकर छोड़ दिया है कि इस बातोंका खुलासा अमुक ग्रन्थमें किया गया है। उनके ही शब्दोंमें 'इसके अन्तमें कार्यविशेष आदिको सूचित करने वाली चार गाथाओंमें निर्दिष्ट सभी बातोंका खुलासा 'जयधवला' पृ० २१४-२२२ में किया ही है सो उसे वहाँसे जान लेना चाहिये। यहाँ मुख्यतया उपशमश्रेणिमें होनेवाले उपयोग और वेदके विषयमें विचार करना है। 'जयधवला' में उपयोगके प्रसंगसे दो उपदेशोंका निर्देश किया गया है।' वास्तवमें प्रकरणके अनुसार जहाँ जितना आवश्यक है, वहाँ उतना ही स्पष्टीकरण, निर्देश तथा संकेत पण्डितजीने किया है। जिनागमके अपने अध्ययनका पूरा-पूरा उपयोग पण्डितजीने इस टीकामें किया है। अनेक स्थलोंपर जिस अर्थमें शब्दका प्रयोग हुआ है, उसका प्रामाणिक रूपसे उल्लेख किया गया है। अर्थका स्पष्टीकरण करते समय पण्डितजीने जयधवलादि मूल आगम ग्रन्थों, चूर्णिसूत्रों, संस्कृत टीका तथा सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीकाको सभी स्थलोंपर अपने सामने रखा है। इस प्रकारका तुलनात्मक अध्ययन करनेवाले बहुत विरल हैं। यही इस टीकाकी महान् उपलब्धि है। गाथा ४३५ का विशेष लिखते हुए पण्डितजी स्पष्ट करते हैं। उनके ही शब्दोंमें 'प्रकृतमें हिन्दी टीकाकार पण्डितप्रवर टोडरमलजी सा० ने पर्याप्त प्रकाश डाल ही दिया है। यहाँ इतना बतला देना आवश्यक प्रतीत होता है कि बन्धकी अपेक्षा तीनों वेदोंमेंसे यहाँ एक पुरुषवेदका ही बन्ध होता है, किन्तु जो जिस वेदके उदयसे क्षपक श्रेणी चढ़ता है, मात्र उसीका उदय रहता है। इसलिये पुरुषवेदके उदयसे श्रेणीपर चढ़े हुए जीवके पुरुषवेदकी अपेक्षा बन्ध और उदय दोनों पाये जाते हैं। हाँ, अन्य दोनों वेदोंमेंसे किसी भी वेदकी अपेक्षा श्रेणी पर चढ़े हुए जीवके पुरुषवेदका मात्र बन्ध ही पाया जाता है। इसी प्रकार यथासम्भव चारों संज्वलन कषायोंकी अपेक्षा भी विचार कर लेना चाहिए। उक्त कषायोंमेंसे किसी भी कषायके उदयसे श्रेणि-आरोहण करे, तो भी यथास्थान बन्ध चारोंका होता है। इस प्रकार इन सब व्यवस्थाओंको ध्यानमें रखकर यहाँ अन्तरकरण सम्बन्धी अन्य व्यवस्थाएँ घटित कर लेनी चाहिए। विशेष स्पष्टीकरण हिन्दी टीकामें किया ही है।'

इस प्रकार पण्डितजीने 'सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका'के भावको स्थान-स्थानपर खोल कर स्पष्ट किया है। जहाँ-कहीं पण्डितप्रवर टोडरमलजीने संस्कृत वृत्तिके भावको अपने शब्दोंमें लिखकर स्पष्ट किया, वहीं पं० फूलचन्द्रजीने अधिक-से-अधिक स्पष्ट तथा विशद करनेके लिए चूर्णिसूत्रों तथा जयधवलादि ग्रन्थोंके अनुसार विशेष शीर्षक देकर स्पष्टीकरण किया है। यदि शोध व अनुसन्धानकी दृष्टिसे विचार किया जाए, तो पण्डितजीने पण्डितप्रवर टोडरमलजीके कार्यको ही आगे बढ़ाया है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जो साहित्यिक कार्य उन्होंने अठारहवीं शताब्दीमें किया था, वही कार्य नई भाषा-शैली में पं० फूलचन्द्रजीने किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संक्षेपमें, पण्डितजी द्वारा लिखित इस टीकाकी निम्नलिखित विशेषताएँ कही जा सकती हैं—

(१) यह किसी टीकाकी टीका-टिप्पणी न होकर टीकाका विशदीकरण मात्र है।

(२) विषयके प्रामाणिक विवेचन तथा स्पष्टीकरण हेतु स्थान-स्थानपर सीधे शब्दोंमें या भावोंमें जिनागमको उद्धृत किया गया है।

(३) टीका-टिप्पणी करते समय तुलनात्मक विवेचन किया गया है। इस प्रकारकी टीकासे भविष्यमें करणानुयोगके तुलनात्मक अध्ययनको बल मिलेगा।

(४) भाषाशास्त्रीय होनेपर भी सरल है। करणानुयोगके किसी एक ग्रन्थका सम्यक् स्वाध्यायी सरलतासे इसे समझ सकता है। यद्यपि पण्डितप्रवर टोडरमलजीने हिन्दी टीकाको बहुत सरल बना दिया है, फिर भी कहीं विषयकी गम्भीरता रह गई है, तो उसे स्पष्ट करनेमें पण्डितजीका अध्ययन व श्रम सार्थक हुआ है।

(५) जहाँ—कहीं अर्थ लगानेमें विद्वान् भी भूल करते हैं, विशेषकर उनका स्पष्टीकरण पण्डितजीकी इस टीकामें हो गया है। अतः स्वाध्यायी एवं विद्वानोंके लिए यह विशेष रूपसे उपयोगी है।

(६) अपनी चौंतीस पृष्ठीय प्रस्तावनामें ग्रन्थ-परिचयके साथ ही 'सैद्धान्तिक चर्चा' के अन्तर्गत मूल विषयका परिचय तथा अर्थसंदृष्टिका पृथक् विवरण दिया गया है जो प्रत्येक स्वाध्यायीके लिए पढ़ना अनिवार्य है।

(७) लब्धिसारकी वृत्तिकी रचनाके सम्बन्धमें पण्डितजीकी इस सम्भावनाको नकारा नहीं जा सकता कि हमारे सामने ऐसा कोई तथ्य नहीं है जिससे सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्रको इसका रचयिता स्वीकार किया जाए। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इसकी रचनाकी शैली आदिको देखते हुए उसी कालके उक्त भट्टारकोंके सम्मिलित सहयोगसे इसकी रचना की गई होगी। यदि किसी एक भट्टारककी रचना होती तो अन्य इसका उल्लेख अवश्य करते।

(८) मूल गाथाओंके सम्पादनमें भी पण्डितजीने अपने दायित्वका पूर्ण निर्वाह किया है। अत मुद्रित प्रतिमें जहाँ-जहाँ संस्कृत शब्द हैं, वहाँ-वहाँ पण्डितजीने स्वविवेकशालिनी बुद्धिसे प्राकृत-शब्दान्तर वाले पाठोंका अधिग्रहण किया है। मूल गाथाके पाठोंमें किए गये इस परिवर्तनका उल्लेख पण्डितजीने अपने 'प्राक्कथन'में किया है। छन्द तथा भावकी दृष्टिसे इन पाठोंमें अधिकतर 'ओकार'से प्रारम्भ होने वालोंके स्थानपर 'उकार' बहुल हैं।

(९) गाथा १६७ की संस्कृत वृत्ति और हिन्दी टीका दोनों नहीं हैं। पण्डितजीने इनकी पूर्ति कर दी है। अर्थके साथ ही विशेष भी दिया है। इसी प्रकार गाथा ४७५ का उत्तरार्द्ध त्रुटित होनेसे पण्डितप्रवर टोडरमलजी समझमें न आनेसे उसका अर्थ नहीं लिख सके। पं० फूलचन्द्रजीने 'जयधवला'से उक्त अंशकी पूर्ति कर विशेषमें सम्पूर्ण गाथाके अर्थका स्पष्टीकरण किया है।

इन विशेषताओंको देखकर यह निश्चित ही कहा जा सकता है कि टीकाके सम्पादनमें तथा टीका-टिप्पण लिखनेमें पण्डितजीने जिस सूझ-बूझका परिचय दिया है, वह यथार्थमें सम्पादनके क्षेत्रमें मान-दण्ड स्थापित करने वाला है। वर्तमान अनुसन्धित्सुओंको इससे प्रेरणा ग्रहण कर शोध व अनुसन्धान-जगत्में नये क्षितिजोंको प्रकाशित करनेमें इसका भरपूर उपयोग करना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org